Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume-3 | Issue-1 | January - 2025 | Page 60-67

यथार्थ और युगसत्य: प्रेमचंद के कथा-साहित्य का पुनर्पाठ

डॉ. दिवाकर तिवारी
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,कला एवं मानविकी संकाय,
आईएसबीएम विश्वविद्यालय
diwakar.tiwari@isbmuniversity.edu.in

सारांश

प्रेमचंद ने भारतीय समाज की जटिलताओं, दुश्वारियों एवं चिंताओं का संवेदनशील और यथार्थपरक चित्रण किया है, जिसमें गरीबी, जातिवाद, शोषण, नारी अधिकार, शिक्षा की कमी जैसे महत्वपूर्ण पहलू स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। इसके साथ ही उन्होंने धार्मिक भेदभाव, बाल विवाह, आर्थिक असमानता, किसानों और मजदूरों की पीड़ा, सांप्रदायिकता, महिला शोषण तथा पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव जैसे विषयों को भी गहराई से उकेरा है। साहित्य का मूल उद्देश्य जीवन के यथार्थ और समय के सत्य को अभिव्यक्त करना है। इस दृष्टि से प्रेमचंद का कथा-साहित्य न केवल अपने युग का सजीव दस्तावेज़ है, बल्कि आज के समय के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है। यथार्थ का आशय जीवन की प्रत्यक्ष, ठोस और अनुभवसिद्ध सच्चाइयों से है, जबकि युगसत्य का अर्थ किसी विशेष कालखंड की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के सामूहिक सत्य से है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में इन दोनों को अभिन्न रूप से प्रस्तुत किया है। उनके पात्र, कथानक और प्रसंग केवल जीवन का चित्रण नहीं करते, बल्कि अपने समय के संघर्षों, विरोधाभासों और आकांक्षाओं को भी सामने लाते हैं। 'गोदान', 'निर्मला', 'सेवासदन', 'कफन' सद्गति, और 'ठाकुर का कुआँ' जैसी कृतियाँ किसान जीवन की दरिद्रता, स्त्री की असमान स्थिति, दलित जीवन की विडंबना और औपनिवेशिक शोषण की वास्तविकता को उद्घाटित करती हैं। यहाँ यथार्थ केवल व्यक्तिगत अनुभव न होकर व्यापक युगबोध में रूपांतरित हो जाता है। इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य 'व्यक्तिगत यथार्थ' और 'सामूहिक युगसत्य' का संगम है। वर्तमान समय में प्रेमचंद की रचनाओं का पुनर्पाठ अनिवार्य है। आज के पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, जातीय असमानता और उससे उपजी हिंसा की पृष्ठभूमि में उनका साहित्य नई

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume-3 | Issue-1 | January - 2025 | Page 60-67

अर्थवत्ता प्राप्त करता है। प्रेमचंद का यथार्थवाद करुणा और मानवीय मूल्यों से सम्पन्न है, जो उन्हें अन्य यथार्थवादी लेखकों से विशिष्ट बनाता है।

प्रस्तावना

बीसवीं सदी की शुरूआत का हिन्दुस्तान केवल राजनीतिक हलचलों का ही नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी गहरे बदलाव का गवाह रहा। इस दौर में औपनिवेशिक शासन ने भारतीय जीवन के हर पहलू को जकड़ रखा था—कृषि से लेकर व्यापार, शिक्षा से लेकर संस्कृति तक। किसानों और मज़दूरों का शोषण बढ़ रहा था, जातिवादी विषमता सामाजिक जीवन को विकृत कर रही थी और स्त्रियों की स्थिति बेहद हाशिये पर थी। दूसरी ओर, आज़ादी की तहरीक अपने शुरुआती चरण में पूरे देश को एक नई उम्मीद और चेतना से भर रही थी। यह वह युग था जहाँ भारतीय समाज पुराने रूढ़िगत ढांचे और नए राष्ट्रीय-सामाजिक सपनों के बीच गहरे द्वंद्व से गुज़र रहा था। ऐसे में साहित्य सिर्फ़ कला का माध्यम नहीं रहा, बल्कि समाज की सच्चाइयों और जनता की आवाज़ बनने लगा। हिंदी साहित्य में यथार्थवाद के सबसे सशक्त प्रवक्ता के रूप में प्रेमचंद का नाम सर्वप्रथम स्मरणीय है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के संधिकाल में जब भारतीय समाज औपनिवेशिक दमन, सामाजिक विषमता और आर्थिक शोषण के संकटों से जूझ रहा था, तब प्रेमचंद ने साहित्य को जीवन का दर्पण मानते हुए अपने उपन्यासों और कहानियों में इन्हीं वास्तविकताओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं के ज़रिये किसानों, स्त्रियों, मज़दूरों और वंचित वर्गों के दुख-दर्द और संघर्ष को एक सजीव और सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की। उनकी सबसे बड़ी खासियत थी कि उन्होंने केवल भावुक कल्पनाओं या आदर्शवादी कहानियों को नहीं लिखा, बल्कि यथार्थ को उसके पूरे तीखेपन और संघर्षशील रूप में पेश किया। मैनेजर पांडेय ने लिखा है कि "बीसवीं सदी के भारतीय समाज के इतिहास की सबसे बड़ी घटना है अंग्रेजी राज की गुलामी से मुक्ति के लिए इस देश की जनता का संघर्ष। प्रेमचन्द उस संघर्ष की वास्तविकताओं और सम्भावनाओं के अनन्य कथाकार होने के कारण बीसवीं सदी के प्रतिनिधि कथाकार भी हैं।"[1] 'गोदान' जैसे उपन्यास में उन्होंने ग्रामीण जीवन के संकट, शोषण और वर्गीय विषमता का सजीव चित्रण किया तो 'रंगभूमि' के माध्यम से औपनिवेशिक सत्ता, पूंजीवादी ताक़तों और शोषित जनता के संघर्ष को प्रखर ढंग से सामने रखा। "सेवासदन" और "गबन" जैसे उपन्यासों में शहरी

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume-3 | Issue-1 | January - 2025 | Page 60-67

समाज की नैतिकता, स्त्रियों की स्थिति और सामाजिक सुधार की ज़रूरतों को सामने रखा। उनकी कहानियाँ, चाहे वह 'पूस की रात हो' या 'कफन', आम जनता के जीवन की सच्चाइयों को दर्शाती हैं।

यथार्थ की आधारभूमि

साहित्य में यथार्थवाद का मतलब है जीवन की सच्चाइयों को उसी तरह दिखाना जैसी वे हैं। इसमें कल्पना या आदर्शवाद से ज्यादा महत्व सच्चाई को दिया जाता है। मानक हिंदी कोश' के चौथे खण्ड में 'यथार्थ' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ दिया है- "1. जो अपने अर्थ (आशय, उद्देश्य, भाव आदि) के ठीक अनुरूप हो। ठीक वाजिब। उचित। 2 जैसा होना चाहिए, ठीक वैसा।"[2] भारतीय दर्शन में यथार्थ को सत् (सत्य) और असत् (मिथ्या) के भेद से जोड़ा गया है। जबकि पश्चिमी दर्शन में यथार्थ को "Reality" कहा गया है, जो अनुभूत जगत के तथ्यात्मक स्वरूप का द्योतक है। प्लेटो और अरस्तू दोनों ने यथार्थ को भिन्न-भिन्न तरह से समझाया— प्लेटो के लिए यथार्थ आदर्श रूपों में था, जबकि अरस्तू के लिए यह प्रत्यक्ष अनुभवों और वस्तुओं के रूप में। साहित्य में हम जिस यथार्थ की बात करते हैं वह उन्नीसवीं सदी में एक साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में उभरा, जिसे सामान्यतः यथार्थवाद (Realism) कहा गया। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से यूरोपीय साहित्य में औद्योगिक क्रांति, सामाजिक परिवर्तन और मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं के परिणामस्वरूप विकसित हुई। इस प्रकार, जहाँ भारतीय दर्शन में यथार्थ सत् और असत् के दार्शनिक भेद से जुड़ा था, और पश्चिमी दर्शन में यह सत्य और वस्तुगत अनुभूति का पर्याय बना, वहीं साहित्य में यथार्थ उन्नीसवीं सदी से मानवीय जीवन की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों का यथासंभव सच्चा और निर्वैयक्तिक चित्रण करने की प्रवृत्ति के रूप में व्याख्यायित हुआ। डॉ. शिवकुमार मिश्र ने स्पष्ट लिखा है कि "यथार्थवाद में जीवन की सभी समस्याओं, परम्पराओं, घटनाओं, रहन-सहन के तौर-तरीकों, जाने-पहचाने शुद्ध स्वरूपों और प्रिय-अप्रिय जीवन प्रसंगों को चित्रित किया जाता है।"[3] मनुष्य का जीवन केवल सतही घटनाओं और बाहरी दृश्य तक सीमित नहीं है। जीवन का वास्तविक स्वरूप इसके भीतर व्याप्त जटिलताओं, समस्याओं, अनुभवों और मनोवैज्ञानिक गहराइयों में छिपा होता है। यही यथार्थ है। नित्शे का कथन है कि 'कोई कलाकार यथार्थ को बर्दाश्त नहीं कर सकता।' तो ज़ाहिर है कि जब वह कठोर और कड़वी हो, तो यथार्थ को सीधे-सीधे स्वीकार करना भावनात्मक और मानसिक रूप से चुनौतीपूर्ण होता है। कलाकार या लेखक का कर्तव्य केवल यथार्थ का नंगे रूप में चित्रण करना नहीं, बल्कि उसे समझदारी, संवेदनशीलता और सौंदर्य की दृष्टि से प्रस्तुत करना भी है।

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume-3 | Issue-1 | January - 2025 | Page 60-67

मुंशी प्रेमचंद ने लिखा है कि यथार्थ का साहित्य में अत्यधिक महत्त्व होता है। उन्होंने यथार्थ को साहित्य का मानदंड मानते हुए अनुभूति की यथार्थता को महत्त्व दिया है। मुंशी प्रेमचंद के अनुसार- "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, ... साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो।" [4] प्रेमचंद के अनुसार साहित्य का मूल उद्देश्य जीवन की सच्चाइयों को प्रकट करना है। वे मानते हैं कि यदि साहित्य केवल मनोरंजन या कल्पना तक सीमित रह जाए तो उसका सामाजिक मूल्य घट जाता है। साहित्य का वास्तविक महत्व तभी है जब वह व्यक्ति और समाज की अनुभूतियों को ईमानदारी से अभिव्यक्त करे। सेवासदन से लेकर गोदान तक और सद्गति से लेकर कफन तक का सम्पूर्ण कथा-साहित्य प्रेमचंद के यथार्थवाद का सशक्त दस्तावेज़ है, जिसमें समाज की विषमताएँ, शोषण, रूढ़िवादिता और मानवीय संघर्ष यथार्थ के धरातल पर पूर्ण स्पष्टता के साथ उभरते हैं। उन्होंने अपने समय के भारतीय समाज को जैसा वह था, वैसा ही उजागर करने का प्रयास किया। 'ठाकुर का कुँआ' कहानी में गंगी जब कहती है कि- "ठाकुर और साहू के दो कुएं तो हैं। क्या एक लोटा पानी न भरने देंगे?" [5] तो गंगी का यह सवाल केवल उसकी व्यक्तिगत विवशता को ही नहीं दर्शाता, बल्कि पूरे दलित समाज की पीड़ा और व्यथा का प्रतीक बन जाता है। यह वाक्य समाज की उस विडंबना को उजागर करता है जहाँ जीवन की सबसे बुनियादी आवश्यकता—पानी—भी जातिगत दीवारों में बाँट दी गई है। प्रेमचंद के युग में जातिगत ऊँच-नीच की व्यवस्था इतनी कठोर थी कि गंगी खुलेआम ठाकुर के कुएँ से पानी नहीं ले सकती। अंधकार, भय और अपमान के बीच वह घूँट-भर पानी लाने का साहस करती है। यह दृश्य केवल एक स्त्री की विवशता का चित्रण नहीं है, बल्कि पूरे भारतीय समाज की जातिगत विसंगति का यथार्थ है। प्रेमचंद की दृष्टि में धर्म केवल बाहरी आडंबर और रस्मी प्रथाओं का नाम नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के नैतिक और सामाजिक मूल्यों का आधार होना चाहिए। 'कर्मभूमि' की बुढ़िया जब कहती है कि– "हमारे नबि का हुक्म है कि शादी-ब्याह में अमीर गरीब का विचार न होना चाहिए, पर उनके हुक्म को कौन मानता है! नाम के मुसलमान, नाम के हिन्दू रह गये हैं। न कहीं सच्चा मुसलमान नज़र आता है, न सच्चा हिन्दू" [6] तो यह इस बात का प्रतीक है कि समाज में धर्म का वास्तविक उद्देश्य खो चुका है। प्रेमचंद दिखाते हैं कि धर्म के नाम पर लोग न केवल अपने स्वार्थ साधते हैं, बल्कि सामाजिक भेदभाव, अन्याय और द्वेष फैलाने में संलग्न हैं।

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume-3 | Issue-1 | January - 2025 | Page 60-67

प्रेमचंद का साहित्य सामाजिक यथार्थ का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है, जिसमें उन्होंने मानवीय मूल्यों और नैतिकता को केंद्र में रखा है। उनके दृष्टिकोण में मूल्य केवल आदर्श रूप में नहीं हैं, बल्कि वे मानव जीवन के व्यवहारिक और दैनिक अनुभवों से जुड़े होते हैं। वे दिखाते हैं कि पूंजीवाद के आगमन और समाज में धन, स्वार्थ और व्यक्तिगत लाभ के बढ़ते प्रभाव ने पारंपरिक नैतिकता और मानवीय मूल्यों को कमजोर किया है, जिससे सामाजिक असमानता, अन्याय और मानव संवेदनाओं की ह्रास जैसी समस्याएँ उभरने लगीं। प्रभाशंकर जो पुराने जमाने के आदमी थे उनके बारे में प्रेमचन्द कहते हैं- "वह कुल-प्रतिष्ठा पर अपने प्राण तक समर्पण कर सकते थे। उनमें वह गौरव-प्रेम था जो स्वयं उपवास करके आतिथ्य सत्कार को अपना सौभाग्य समझता था, और जो अब, हा शोक ! इस देश से लुप्त हो गया है। धन उनके विचार में केवल मान-मर्यादा की रक्षा के लिए था, भोग-विलास और इन्द्रिय सेवा के लिए नहीं।" [7] प्रेमचंद के इस कथन से स्पष्ट होता है कि पुराने समाज में मानवीय संबंध और सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार धन नहीं बल्कि नैतिकता और परंपरागत मूल्यों पर टिका हुआ था। लेकिन प्रेमचंद यह भी दिखाते हैं कि आधुनिक समय में यह मूल्य-व्यवस्था टूटने लगी। पूंजीवाद ने जब समाज में प्रवेश किया तो धन और भोग की लालसा ने मानवीय रिश्तों को विकृत करना शुरू कर दिया। जहाँ पहले उपवास करके भी अतिथि का स्वागत करना सौभाग्य माना जाता था, वहाँ अब आत्मीयता के स्थान पर स्वार्थ और प्रतिस्पर्धा ने जगह ले ली। प्रेमचंद का साहित्य केवल अतीत का स्मरण या परंपरा की स्तुति नहीं करता, बल्कि बदलते समाज के यथार्थ को उजागर करता है। उनका यथार्थदर्शन केवल 'बाहरी सामाजिक घटनाओं' का अंकन नहीं है, बल्कि मानवीय मूल्यों के क्षरण और सामाजिक परिवर्तन की गहरी पड़ताल है।

युग्सत्य का विवेचन

युग्सत्य से तात्पर्य लेखक के उस युग या समय से होता है जिसमें वह रहता है और जिसका प्रभाव उसके साहित्य पर पड़ता है। यह सामान्य तौर पर दो शब्दों से मिलकर बना है- युग और सत्य। युग का सामान्यतः अर्थ 'काल' से लिया जाता है। युग शब्द का कोशगत अर्थ है समय, जानकारी, प्रतीति, काल, स्वरूप, किसी के अस्तित्व प्रकार, बोध।" [8] "युग" शब्द समयानुसार बदलता रहता है, किंतु "सत्य" सीमाओं में बंधा नहीं होता। युग बदलते गए—भारतेन्दु का युग छायावाद में और छायावाद प्रगतिवाद में रूपांतरित होता गया। प्रवृत्तियाँ और मानसिक धारणाएँ परिवर्तित होती रहीं, पर सत्य अपनी गति से आगे बढ़ता रहा। वह प्रत्येक

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume-3 | Issue-1 | January - 2025 | Page 60-67

काल में अलग-अलग रचनाकारों के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। सत्य को देखने-समझने का तरीका अलग-अलग होने के कारण उसकी अभिव्यक्ति भी विविध रूपों में सामने आती है। हर युग किसी न किसी रूप में अपने समय के रचनाकार को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। प्रेमचंद का साहित्यिक जीवन लगभग तीन दशकों (1905–1936) तक फैला हुआ है। यही वह कालखंड है जब भारतीय राजनीति और समाज में गहन हलचलें हो रही थीं। महात्मा गाँधी का 1919 में दक्षिण अफ्रीका से आगमन और 1920 से असहयोग आंदोलन का आरंभ इस युग की निर्णायक घटनाएँ थीं। इसलिए प्रेमचंद और गाँधी का युग एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ कहा जा सकता है।

प्रेमचंद की कहानी 'कफ़न' और पूस की रात, हो या उपन्यास 'प्रेमाश्रम' या 'गोदान' ये केवल किसान, मजदूर एवं ग्रामीण समाज में किसी पात्र की व्यक्तिगत त्रासदी नहीं, बल्कि उस युग का सत्य है, जहाँ उपनिवेशवाद, जमींदारी और साहूकारी शोषण से किसान, मजदूर एवं ग्रामीण समाज पिस रहा था। गोदान को पढ़ते हुए यह भी लगता है कि नई पीढ़ी में प्रतिरोध और आत्मनिर्भरता की चेतना उभर रही थी। यही उस समय का युगसत्य था—एक ओर दमन और अन्याय की कड़ी दीवारें, दूसरी ओर संघर्ष और परिवर्तन की अनिवार्य चाह। प्रेमचंद के प्रेमाश्रम का मनोहर आत्मसम्मान का प्रतीक है, जो अन्याय के सामने झुकने को तैयार नहीं होता। उससे भी प्रखर और उग्र विद्रोह की चेतना बलराज के चरित्र में दिखाई देती है, जो अन्यायपूर्ण सत्ता को खुली चुनौती देता है। वह कहता है कि "जमींदार कोई बादशाह नहीं कि चाहे जितनी जबर्दस्ती करें और हम मुँह न खोलें। इस जमाने में तानाशाहो को भी इतना अखत्यार नहीं, जमींदार किस गिनती में है।" [9] गोदान उपन्यास में होरी के दब्बूपन का विरोध करता हुआ गोबर कहता है कि "यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी को क्यों सलामी करो।"[10] गोबर ने यह भी कहा है कि "सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफ़तों पर विजय पानी होगी। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आयेगी।"[11] ऐसे कई और प्रसंग हैं जिनमें प्रेमचंद ने अपने युगसत्य को नए ढंग से रेखांकित करने का प्रयास किया है। वह चाहे औपनिवेशिक गुलामी और दमन को चित्रित करता उपन्यास रंगभूमि हो या दहेज प्रथा और स्त्री–यातना को नए सिरे से उजागर करता निर्मला, किसानों की दुर्दशा का यथार्थ प्रस्तुत करता गोदान हो या सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वास

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume-3 | Issue-1 | January - 2025 | Page 60-67

पर प्रहार करती उनकी कहानियाँ – हर जगह उन्होंने अपने युग के ज्वलंत प्रश्नों को साहित्य का विषय बनाकर युगसत्य को रेखांकित किया है।

प्रेमचंद का साहित्य हिंदी साहित्य में यथार्थवाद और युगसत्य का सबसे सशक्त उदाहरण है। उन्होंने अपने समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों को केवल बाहरी घटनाओं के रूप में नहीं प्रस्तुत किया, बल्कि उन्हें मानवीय संवेदनाओं, नैतिक मूल्यों और सामाजिक संबंधों से जोड़कर गहराई प्रदान की। यही कारण है कि उनका साहित्य किसी एक वर्ग या समस्या तक सीमित नहीं रहता, बल्कि पूरे युग का दर्पण बन जाता है। औपनिवेशिक दमन, किसान की दरिद्रता, स्त्री की यातना, दहेज प्रथा, जातीय भेदभाव और राष्ट्रवादी चेतना—इन सबको प्रेमचंद ने अपने लेखन में स्थान देकर यह दिखाया कि साहित्य जीवन से कटकर नहीं, बल्कि जीवन की धड़कनों से जुड़कर ही सार्थक होता है। प्रेमचंद ने यथार्थ को केवल "जो है" के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसमें "जो होना चाहिए" की आकांक्षा भी जोड़ी। यही उनकी रचनाओं में युगसत्य का स्वर बनकर उभरता है। गोदान में होरी की पीड़ा केवल एक किसान की व्यक्तिगत त्रासदी नहीं, बल्कि समूचे भारतीय कृषक वर्ग का युगीन सत्य है। निर्मला की यातना केवल दहेज-प्रथा की आलोचना नहीं, बल्कि उस समय स्त्री की सामाजिक स्थिति का आईना है। इसी प्रकार रंगभूमि औपनिवेशिक गुलामी के विरुद्ध जनचेतना का प्रतीक बनकर सामने आता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य न तो केवल कलात्मक है और न ही केवल सामाजिक दस्तावेज़; वह दोनों का सम्मिलन है। उसमें जीवन की कठोर वास्तविकताएँ हैं, पर साथ ही भविष्य की संभावनाओं की ओर संकेत भी है। उन्होंने अपने युगसत्य को इस तरह प्रस्तुत किया कि वह आज भी हमें न केवल उस समय को समझने में मदद करता है, बल्कि वर्तमान समाज की चुनौतियों पर विचार करने की प्रेरणा भी देता है। यही प्रेमचंद के साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है और यही उन्हें कालजयी लेखक बनाती है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का कथा-साहित्य न केवल अपने युग का सत्य उद्घाटित करता है, बल्कि समयातीत मानवीय मूल्यों और यथार्थ की गहरी पहचान कराता है। उनके पुनर्पाठ से आज भी समाज और साहित्य दोनों के लिए दिशा-निर्देश प्राप्त होता है।

Innovation and Integrative Research Center Journal
ISSN: 2584-1491 | www.iircj.org
Volume-3 | Issue-1 | January - 2025 | Page 60-67

संदर्भ ग्रंथ-

1. ए. अरविंदाक्षन, प्रेमचंद में आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 30
2. सं. रामचन्द्र वर्मा 2. मानक हिंदी कोश, पृष्ठ 435
3. डॉ शिव कुमार मिश्र, यथार्थवाद, पृ. 142
4. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ. 10
5. प्रेमचंद, ठाकुर का कुँआ, भारतीय दलित जीवन की कहानियाँ, संस्करण 2006, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, पृ. 9
6. प्रेमचंद, कर्मभूमि, डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ. 35
7. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृ. 169
8. कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लि. प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 99
9. प्रेमचंद, प्रेमाश्रम, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृ. 168
10. प्रेमचंद, गोदान, ओरिएंट पब्लिशिंग, 2010, पृ. ,297
11. प्रेमचंद, गोदान, ओरिएंट पब्लिशिंग, 2010, पृ. ,297